

अपनी धरती से प्यार कर

डॉ० बिभा कुमारी

उपन्यास का शीर्षक 'मगरमुँहा' पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है, और इस जिज्ञासा का समाधान उपन्यास पढ़ने के पश्चात ही होता है। उपन्यास में व्यक्ति की आंतरिक शक्ति, इच्छाशक्ति एवं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रक्षालन द्वारा बेहतर व्यक्ति एवं समाज की नयी संरचना का स्वप्न और उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। एक व्यक्ति से आरंभ होकर यह प्रयास मुहल्ले, नगर और देश की बेहतरी के लिए है। आदर्श और यथार्थ तथा परंपरा और आधुनिकता के बीच का संतुलन ही जीवन की निरंतरता को समुचित प्रवाह प्रदान करता है। शिखर का चरित्र आदर्श की चरमसीमा का स्पर्श करता है, तो देवव्रत घोर यथार्थवादी है। शिखर ने उज्जैन प्रथम अभियान की शुरुआत की तो देवव्रत ने उसे नित नयी ऊंचाई की ओर अग्रसर किया। इस अभियान का मूल उद्देश्य है, समस्त मानव का कल्याण, जिसकी शुरुआत अपने मुहल्ले से होती है। अधिकतर पात्र आदर्शवादी हैं, विशेष रूप से शिखर। इस आदर्शवाद को कायम रखने हेतु उसे घोर कष्ट सहन करना पड़ता है। गायत्री के प्रति उसके मन में जो प्रेम था, उसे वह अपने आदर्शों के कारण झुठलाना चाहता था, और इस प्रयास में लगातार पलायन कर रहा था। इसी पलायन के क्रम में वह अपने मित्र श्याम कलेवर दुबे के घर, फिर किराए के घर, सेवाधाम आश्रम, पंचक्रोशी यात्रा कहाँ-कहाँ नहीं भटकता है। पंचक्रोशी यात्रा के दौरान वह अनुभव करता है कि उसे हेल्थिनेशन (मतिभ्रम) की बीमारी लग गयी है, साथ ही नींद में चलने की बीमारी भी। बचपन में उसे सरो जीजी ने बताया था कि इस मुहल्ले के मुँह पर बाढ़ में कभी मगर आ गया था, इसीलिए इसका नाम 'मगरमुँहा' पड़ा। मगरमुँहा से वह इस कदर भाग रहा था कि उसकी स्थिति मानसिक विक्षिप्त के समान हो गयी थी। स्वयं से जूझते हुए उसकी मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि उसे हर तरफ मगरमच्छ दिखाई पड़ता है।

उज्जैन नगरी वास्तव में प्राचीन भारतीय सभ्यता, मान्यता, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज़, और सामाजिक संरचना की जीवंत मिसाल है। इस पौराणिक और पुरा ऐतिहासिक नगरी उज्जैन को इस

उपन्यास के केंद्र में रखा गया है। इसी प्राचीन नगरी का प्राचीन मुहल्ला है- 'मगरमुँहा'। उपन्यास के कथानक का आरंभ इसी 'मगरमुँहा' मुहल्ले से होता है।

मुहल्ला, शहर, और देश के साथ व्यक्ति के जो अनुभव होते हैं, वो ताउम्र उसे अपनी मिट्टी से जोड़े रखते हैं। यदि एक तरफ़ व्यक्ति मुहल्ले, शहर और देश में रहता है, तो दूसरी तरफ़ मुहल्ला, शहर और देश भी उसके भीतर रहता है। स्थान विशेष के साथ मनुष्य का गहरा संबंध होता है। प्रायः उपन्यासों के फ़लक को बाह्यजगत और अंतर्जगत के दायरों में विभाजित कर लिखने और विश्लेषित करने की कठोर परंपरा रही है। परंतु प्रस्तुत उपन्यास 'मगरमुँहा' में ऐसी कोई विभाजन रेखा उपस्थित नहीं है। एक ओर देश-काल वातावरण पूरी समग्रता में चित्रित है, तो दूसरी ओर मानव-मन की भीतरी परतें परत-दर-परत खुलती चली गयी हैं। चेतन और अवचेतन मन की अनुभूतियों के संघर्ष में मनुष्य का निरंतर स्वयं से जूझना, सामाजिक मान्यताओं, मर्यादाओं के बन्धन की छटपटाहट को झेलने के लिए बाध्य होना, आदर्श की स्थापना के लिए इच्छाओं, आकांक्षाओं, कामनाओं की उपेक्षा करना, प्रेम के स्थान पर त्याग का चयन करना आदि परिस्थितियों का उपन्यासकर ने अत्यंत सजीव चित्रण किया है। उपन्यास का नायक एक आदर्शवादी व्यक्ति है, यश, मर्यादा, सिद्धान्त इन सबका वजन उसके कंधे पर इतना अधिक बढ़ता गया है, कि वह स्वयं उस बड़प्पन के बोझ के नीचे दब कर मिट गया है।

“क्या यश भी मनुष्य के साथ यही खेल खेलता है, जब यश का कद मनुष्य से बड़ा हो जाता है? कितना अजीब होता है यह खेल कि मनुष्य पहले तो स्वयं यश के पीछे भागता है, किन्तु जब वो यश के घोड़े पर सवार हो जाता है और वो घोड़ा दौड़ पड़ता है तब वो पाता है कि घोड़े के मुँह में तो लगाम ही नहीं है। कितना असहाय हो जाता है मनुष्य उस वल्गा-विहीन अश्व पर आरूढ़ होकर।”¹

कथानक में कई मोड़ आते हैं, इन मोड़ों और घटनाओं से जुड़े विविध चित्र उपन्यास में उपस्थित हैं। मानव जीवन के अच्छे बुरे अनुभव, बचपन की यादें और उन यादों के माध्यम से बाल-मनोविज्ञान का चित्रण, मनुष्यों के आपसी संबंध, विशेष रूप से वे संबंध जो रक्त-आधारित नहीं होते बल्कि प्रेम और मैत्री पर आधारित होते हैं।

स्त्री-पुरुष का सहज आकर्षण, उम्र तथा अन्य सामाजिक बंधनों को नहीं मानने वाला प्रेम। कुछ ऐसा ही प्रेम है गायत्री और शिखर का। हालांकि उपन्यासकर ने तर्क जुटाया है कि सरो के साथ शिखर का रक्त संबंध नहीं है। तर्क को मज़बूती देने के लिए यह भी जोड़ा है कि गायत्री सरो की अपनी बेटी नहीं है। लेकिन शिखर इतना आदर्शवादी चरित्र है, कि उपन्यासकार के दोनों तर्कों को दबाकर अपने प्रेम का बलिदान देता है। यद्यपि इन परिस्थितियों में वह टूटता है, रोता है, साधू की शरण में जाता है। साधू द्वारा शराब पिलाने पर उस पर बिगड़ता है कि उसने उसे भ्रष्ट कर दिया। नशे की हालत में साधू उसे उसके घर पहुँचाता है, जहाँ रूपा उसकी सेवा करती है। नशे में वह रूपा को गायत्री समझता है, वह तन-मन का सम्पूर्ण नियंत्रण खो बैठता है। यहाँ उपन्यासकार ने अतिआदर्शवाद की परिणति को अतियथार्थवाद में ढलते हुए चित्रित किया है। मनुष्य जब स्वयं की और दूसरों की आँखों में भी महान

बनने की कोशिश करता है, तो प्रायः वह अपना विवेक खो देता है। एक सामान्य मनुष्य के जीवन की सहजता खो देता है।

उपन्यास का आरंभ ही नायक की उस ग्लानि से होता है, जिसमें वह पहले गायत्री से स्वप्न में, और जागने पर वास्तव में प्रेम करता है। यह प्रेम का एक उद्दाम क्षण था, जिसमें दोनों पल भर के लिए एक-दूसरे में खो गए थे, और अपने सच्चे प्रेम का मौन प्रदर्शन किया था।

रूपा का परमानंद जोशी से भी ऐसा ही प्रेम था, जो उम्र, संबंध आदि बंधनों को नहीं मानता।

“उनके गले में बाँहें डाले रूपा ने जोशी जी को देखा और रुआँसी बोल पड़ी- “मैं आपसे प्रेम करती हूँ।” जोशी सहज रूप में बोले -“तो फिर रो क्यों रही हो? यह तो अच्छी बात है कि तुम मुझसे प्रेम करती हो। आखिर मैं तुम्हारा काकू हूँ।”

“नहीं-नहीं, काकू नहीं, काकू नहीं। मैं तो आपकी प्रेयसी हूँ।”²

परन्तु रूपा को परमानंद जोशी और उनकी पत्नी दोनों मिलकर समझाते हैं, और रूपा अपने मन को समझा लेती है, और परमानंद जोशी को काकू के रूप में स्वीकार कर लेती है। वह काकू और काकी माँ दोनों से बहुत प्यार करती है, और दोनों की बहुत इज्जत करती है।

रूपा के पति के नए घर में गृहप्रवेश था, जिसे हाउस वार्मिंग पार्टी का नाम दिया गया था। इस पार्टी में रूपा के पति के दोस्तों ने जोशी जी का अपमान किया, रूपा ने उन लोगों का विरोध किया।

“आप राइटर हैं, यह तो समझ में आ गया। मगर काम क्या करते हैं? व्हाट इज योर जॉब?”

थोड़ी सख्ती से परमानंद जी बोले- “चलिए अंग्रेजी में ही बोल देता हूँ। राइटिंग इज माय ओनली फुलटाइम जॉब।”

“यू मीन, राइटिंग इज योर लाइवली हुड?”

“जी नहीं, मैं आजीविका के लिए नहीं लिखता।”

“वेरी स्ट्रेंज, हाउ डु यू रन योर हाउसहोल्ड?”

रूपा ने हस्तक्षेप किया- “एक्स्क्यूज मी, नो पर्सनल क्वेश्चन प्लीज़।”³

रूपा के विरोध पर उसके पति ने अपने दोस्तों की तरफ़दारी की, और कहा कि वह उसके दोस्तों से इस तरह बात नहीं कर सकती। उसने उसे थप्पड़ मारा, उसे घर से निकल जाने को कहा, उसी वक्त रूपा ने कह दिया कि उसे तलाक़ चाहिए। पति का घर छोड़ने के बाद रूपा जोशी दंपति के साथ ही रहने लगी। कभी-कभार दो-एक दिन के लिए मायके जाती थी। जोशी जी के साथ रूपा कविता, कहानी और उपन्यास लिखने लगी, और धीरे-धीरे एक कवयित्री के रूप में स्थापित हो गयी।

शिखर और उसकी जीजी सरो रक्त- संबंध से नहीं जुड़े हैं। शिखर सरो की सहेली पारो का भाई है। पारो की मृत्यु के पश्चात सरो उसे अपने घर ले आई थी और उसे अपने बेटे की तरह पाला था। शिखर के चाचा ने शिखर को अपने साथ ले जाने की पूरी कोशिश की थी, पर सरो ने उनकी एक नहीं सुनी।

“पहले मुझे मेरी बात खत्म करने दीजिए। इसे आप पत्थर की लकीर मान लीजिए कि शिखर का भविष्य हमारे और सिर्फ हमारे साथ अब जुड़ गया है। आपने मेरे इस फैसले के खिलाफ एक भी शब्द बोला तो मैं महाभारत मचाऊँगी और आपकी भयानक बदनामी होगी। मेरे फैसले के खिलाफ, मैं किसी का भी मुँह नोच सकती हूँ।”⁴

पारो की चचेरी बहन लक्ष्मी गर्भवती पारो की देखभाल के लिए आई थी। इसी दौरान लक्ष्मी और पारो के पति के बीच संबंध बन गए। पारो गर्भावस्था में इस झटके को सहन न कर सकी, और उसकी मृत्यु हो गयी।

“बिस्तर पर नज़र पड़ते ही उसकी आँखें फटी की फटी रह गयीं। लक्ष्मी उसके पति के साथ लिपटी हुई गहरी नींद में सो रही थी। पारो के दिल की धड़कनें इतनी तेज हो गयीं कि वो स्वयं अपनी धड़कन महसूस कर सकती थी। उसके दिमाग की नस बेतरह तड़पने लगी और मुँह से आर्तनाद निकला- ‘लक्ष्मी’”⁵

पारो चचेरी बहन और पति द्वारा दिए गए इस धोखे से बाहर नहीं निकाल पायी। उसे सरो के अतिरिक्त किसी पर भरोसा नहीं था। माता - पिता पहले ही चल बसे थे, वह किसी भी कीमत पर अपने भाई शिखर को चाचा के साथ नहीं भेजना चाहती थी।

उपन्यास के अंत में उज्जैन के खास चौराहे पर शिखर की मूर्ति लगाई जाती है, परंतु शिखर की इच्छानुसार चेहरा सपाट रखा जाता है। शिखर का मानना था कि यदि किसी की मूर्ति की स्थापना की जाए, तो उसका चेहरा सपाट रखा जाना चाहिए, ताकि हजारों-लाखों लोग उसमें अपना चेहरा देख सकें। शिखर और रूपा के पुत्र को गायत्री अपनी गोद में ले उसे ‘भारत प्रथम’ नाम देती है। उपन्यास व्यष्टि और समष्टि के आपसी सम्बन्धों को भलीभाँति पुष्ट करता है। यद्यपि लेखक ने आदर्श और यथार्थ के संतुलन और समन्वय का प्रयास किया है, पर जाने- अनजाने आदर्श की तरफ अधिक उन्मुख हुए हैं। प्रूफ की कमी कई स्थानों पर खटकती है, जो कथा-प्रवाह में बढ़ा उपस्थित करती है। आवरण चित्र अशोक भौमिक की है, अमूर्त चित्र की तो विशेषता ही यही होती है कि दर्शक उसमें जो ढूँढना चाहे ढूँढ ले। उपन्यास का शीर्षक जितनी जिज्ञासा पैदा करता है, उतनी ही जिज्ञासा आवरण चित्र भी उत्पन्न करती है। इस दृष्टि से शीर्षक और आवरण चित्र एक-दूसरे के अनुकूल हैं। सम्पूर्ण कथा के साथ आरंभ से लेकर अंत तक व्यक्ति और स्थान के सम्बन्धों को महत्व दिया गया है। फिर चाहे वह उज्जैन के तांगे के वर्णन द्वारा किया गया हो, चाहे उज्जैन प्रथम और भारत प्रथम अभियान द्वारा। उपन्यास का शीर्षक भी मुहल्ले के नाम पर रखा गया है, यद्यपि यह कथा नायक कि जन्म भूमि नहीं है, परंतु उसी मुहल्ले में उसके जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पल बीते हैं। सरो जीजी, नरोत्तम जीजा और गायत्री का प्यार और सहयोग मिला है।

1. मगरमुँहा पृ. 35-36
2. वही पृ. 69
3. वही पृ. 136
4. वही पृ. 146

समीक्षित पुस्तक-मगरमुँहा

लेखक - प्रभातकुमार भट्टाचार्य

प्रकाशक -भारतीय ज्ञानपीठ

18,इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003

प्र. सं . 2016, पृ. सं. 328

मूल्य-500/-

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें

